**ओ३म्**

**‘वर्ण और जन्मना जाति व्यवस्था तथा हमारा वर्तमान समाज’**

**-मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून।**

उपलब्ध ज्ञान के आधार पर यह ज्ञात होता है कि अमैथुनी सृष्टि के प्रथम दिन ही जगत पिता ईश्वर ने अपनी शाश्वत् प्रजा मनुष्यों के कल्याणार्थ श्रेष्ठ पवित्र आत्माओं जो अग्नि, वायु, आदित्य व अंगिरा नामक चार ऋषि कहे जाते हैं, को क्रमशः चार वेदों ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद का ज्ञान दिया था। ईश्वर सर्वव्यापक व सर्वज्ञ होने से सर्व प्रकार से पूर्ण है, उसमें किसी प्रकार की न्यूनता नहीं है। अतः उसका दिया हुआ ज्ञान भी हर दृष्टि से पूर्ण होना चाहिये। सृष्टि की रचना देखकर विदित होता है कि ईश्वर पक्षपात रहित है और न्यायकारी है। इसके साथ वह दयालु और करूणा का सागर भी है। अतः ईश्वर ने प्रथम चार ऋषियों को अपने अनुरूप श्रेष्ठ बुद्धि से भी सम्पन्न किया था। चार ऋषियों को वेदों का ज्ञान प्राप्त होने पर इन ऋषियों ने ब्रह्माजी को चारों वेदों का ज्ञान कराया। स्वभाविक है कि जब एक-एक ऋषि ने ब्रह्मा जी को एक-एक वेद का ज्ञान कराया होगा तो अन्य तीन ऋषियों ने भी वहीं उपस्थित होने के कारण उसे सुना व समझा होगा। इस प्रकार ब्रह्मा जी जहां चारों वेदों के ज्ञाता हुए, वहीं अन्य चारों ऋषि भी चारों वेदों के ज्ञाता हो गये थे। इस प्रक्रिया के सम्पन्न होने के बाद इन पांच ऋषियों द्वारा सभी स्त्री व पुरूषों को चारों वेदों का ज्ञान कराना सम्भावित है। यह किस विधि से कराया गया, इस विषय में तो केवल इतना ही कहा जा सकता है कि प्रवचन, उपदेश आदि के द्वारा कराया होगा। इससे यह भी स्पष्ट होता है कि आदि सृष्टि में कुछ काल बाद ही पहली अमैथुनी पीढ़ी के सभी स्त्री व पुरूष वेद ज्ञान से सम्पन्न हो गये थे। इसका कारण यह है कि जहां गुरू व शिष्य दोनों उत्तम हों, गुरूजन विद्यावान व श्रेष्ठ आचरण वाले हों और शिष्य विद्यार्जन के लिए अत्यन्त उत्सुक हों तो वहां ज्ञान का आधान व प्रचार शीघ्र व सरलता से हो जाता है।

सृष्टि के आरम्भ में वेद ज्ञान के सभी स्त्री व पुरूषों द्वारा ग्रहण लेने की प्रक्रिया के पूरी होने के बाद सामाजिक व्यवस्था कैसी हो? यह समस्या आदि मनुष्य समाज के सामने आई होगी। इसका हल करने के लिए उनके पास सबसे बड़ा साधन वेद ज्ञान ही था। इसके लिए वेद का मन्त्र **‘ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः। ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्याम् शूद्रो अजायत।। (यजुर्वेद 31/11)** का मार्गदर्शन उपलब्ध था जिसका पूरा लाभ लिया गया। इस वेदमन्त्र सहित सभी ऋषियों और मनुष्यों का बौद्धिक ज्ञान व उनकी क्षमतायें भी उच्च कोटि की थीं। उन्हें ज्ञात था कि हमें अपनी सन्तत्तियों के लिए अच्छे शिक्षकों की आवश्यकता है। अन्न, फलों व दुग्धादि के उत्पादन व उपलब्धता के लिए कृषकों की व वितरण के लिए वैश्यों की आवश्यकता है। समाज के सभी लोगों की हिसंक पशुओं व आचार विहीन लोगों के सुधार के लिए बलवान व बुद्धिमान रक्षकों तथा न्यायाधीशों की आवश्यकता है। इसी प्रकार से शिक्षकों, कृषकों, वणिकों व रक्षा व न्याय व्यवस्था से जुड़े लोगों को सहायकों की आवश्यकता भी अनुभव की गई होगी। इसके लिए गुण, कर्म व स्वभाव के अनुसार चार वर्ग व श्रेणियां बनाई गईं थी जो अज्ञान, अन्याय व अभाव का नाश करें और चतुर्थ वर्ण इनके कार्यों में सहयोग प्रदान करें। इस व्यवस्था को ही वर्णाश्रम व्यवस्था का नाम दिया गया। वर्ण का अर्थ चुनाव करना होता है। जिसने ज्ञानी व शिक्षक अथवा विद्या से जुडे़ कार्य करने का संकल्प लिया और जो उस योग्यता को प्राप्त करने में सफल हुआ, उसे गुरूकुल के आचार्यों व समकालीन ऋषियों ने सामूहिक रूप से ब्राह्मण नाम से सम्बोधित किया व सम्मान दिया। इसी प्रकार से समाज की आवश्यकता के अनुरूप अन्य वर्णों को क्षत्रिय व वैश्य नामों से अभिहित किया गया। जो लोग अधिक ज्ञान सम्पन्न न हो सके उन्हें अन्य तीन वर्णों के साथ सहयोग करने के लिए शूद्र व श्रमिक नाम से सम्बोधित किया गया। यह व्यवस्था इतनी उत्तम थी कि यह सृष्टि के आरम्भ से महाभारत काल तक स्थापित रही। महाभारत काल के बाद इसमें व्यवधान उपस्थित हुए और हमारे पण्डितों ने इसे जन्म पर आधारित व्यवस्था बना दिया। विचार करने पर इस जन्मना व्यवस्था में ब्राह्मण व पण्डित वर्ग का अज्ञान व स्वार्थ दोनों ही प्रतीत होता है।

मध्यकाल में ब्राह्मण व पण्डित वर्ग में अज्ञान बढ़ा और तब मिथ्या अन्धविश्वास, कुरीतियां व सामाजिक विषमताओं ने जन्म लिया। दुर्भाग्य से क्षत्रियों व वैश्यों के वेद एवं वैदिक साहित्य के अध्ययन के अवसर भी कम हुए परन्तु शूद्र परिवार में जन्में बालक व बालिकाओं सहित सभी वर्णों की स्त्रियों को एक कल्पित वाक्य **‘स्त्री शूद्रौ नाधीयताम्’** कहकर वेदाध्ययन से वंचित कर दिया गया जिसका देश व समाज पर विपरीत प्रभाव पड़ा। इससे देश व समाज निर्बल होता गया और व्यक्ति विशेष दुःख व अभाव का शिकार होते गये। यद्यपि महाभारत काल के बाद हमारे देश में महापुरूषों की कमी नहीं रही परन्तु इनमें पूर्ण वेदज्ञानी कोई नहीं था। अनेक प्रसिद्ध व प्रतापी राजा हुए हैं जिनकी कई सहस्र वर्षों के शासन की सूची भी उपलब्ध है। स्वाभाविक है कि यदि एकाधिक अच्छे विद्वान हों तो शिक्षा व्यवस्था को पुनः स्थापित किया जा सकता है परन्तु यदि विद्वानों की भरमार हो और सभी अज्ञान व स्वार्थ से ग्रसित हों तो फिर समाज व देश का उत्थान सम्भव नहीं है। ऐसा ही मध्य काल के दिनों में देखने को मिलता है। स्वामी शंकराचार्य, भगवान बुद्ध, भगवान महावीर, सन्त कबीर, सन्त तुलसीदास, मीराबाई, गुरूनानक देव जी, गुरू गोविन्दसिंह, राजा राममोहन राय आदि अनेक महान पुरूष हुए परन्तु समाज की स्थिति में न्यूनाधिक सुधार तो हुआ परन्तु किसी ने सभी धार्मिक व सामाजिक समस्याओं का ऐसा हल प्रस्तुत व प्रचारित नहीं किया जैसा कि जैसा उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में वेदों के ऋषि स्वामी दयानन्द जी ने किया था। महर्षि दयानन्द जन्मना वर्ण व्यवस्था को नहीं मानते थे। वह शास्त्रीय उदाहरणों एवं अपने प्रबल तर्कों से जन्मना वर्णव्यवस्था का खण्डन करते थे। वह वेद और मनुस्मृति वर्णित गुण, कर्म व स्वभाव पर आधारित वर्ण व्यवस्था के समर्थक थे। जन्मना वर्ण व्यवस्था को वह एक स्थान पर **“मरण व्यवस्था”** के नाम से उल्लेख करते हैं। हम यह अनुभव करते हैं कि यद्यपि वैदिक काल में प्रचलित वर्ण व्यवस्था को वर्तमान युग में पुनर्स्थापित तो नहीं किया जा सकता परन्तु आर्य समाज में एक प्रकार से कुछ-कुछ यह स्थापित हुई सी दीखती है। आर्य समाज ने सभी वर्ण व जन्मना जाति के बन्धुओं को जिसमें हमारे दलित परिवारों के भाई व बहिन भी सम्मिलित थे, गुरूकुलों में अध्ययन व अध्यापन का अधिकार दिया। वह संस्कृत व्याकरण व शास्त्रों को पढ़कर बड़े-बड़े विद्वान बने जिनके नाम के आगे पण्डित शब्द का प्रयोग व उच्चारण किया जाता रहा है और यह एक नई परम्परा का सूत्रपात है जो कि महर्षि दयानन्द के समय व उससे पहले भारत में कहीं भी नहीं थी। हमारे प्रिय दलित भाई जो गुरूकुल में पढ़े हैं, उन्हें भी सर्वत्र पण्डितजी या आचार्यजी ही कहकर सम्बोधित करते हैं। यह वर्ण व्यवस्था के क्षेत्र में एक बहुत बड़ी सामाजिक क्रान्ति है जो महर्षि दयानन्द और आर्य समाज की देन है। यह वस्तुतः युग परिवर्तन है। इस सीमा तक तो आर्य समाज ने इस जन्मना जाति व्यवस्था को दूर किया ही है। आर्यसमाज ने ही समाज में गुण-कर्म-स्वभाव पर आधारित विवाहों का समर्थन किया जिससे इनका शुभारम्भ होकर आज तीव्रगति से ऐसे विवाह हो रहे है जिन्हें आज कल प्रेम विवाह के नाम से जाना जाता है जिसमें प्रचलित वर्ण व जाति का ध्यान नहीं रखा जाता, गुण-कर्म-स्वभाव को ही महत्व दिया जाता है। आज कल यह जाति व्यवस्था इतनी ढीली पड़ गई है कि अधिकांश माता-पिता अपनी सन्तानों के लिए गुण-कर्म-स्वभाव पर आधारित श्रेष्ठ वर व वधु का चयन कर विवाह सम्पादित करते हैं। यह सब महर्षि दयानन्द व उनके आर्यसमाज की ही देन है।

महर्षि दयानन्द अपने समय के पहले ऐसे महापुरूष थे जिन्होंने हिन्दुओं के प्रमुख शास्त्रीय ग्रन्थ वेद के आधार पर जन्मना जाति का विरोध किया और अपने जीवन व व्यवहार से उसे अग्राह्य व निषिद्ध किया। उन्होंने एक बार एक नाई द्वारा भोजन के रूप में रोटी प्रस्तुत करने पर पौराणिक पण्डितों के विरोध के बावजूद उसे स्वीकार कर सबके सम्मुख उसे ग्रहण किया और तर्क प्रस्तुत किया कि रोटी नाई की नहीं अपितु गेहूं की है। अन्न व भोजन यदि सच्चाई, धर्म व परिश्रम पूर्वक धन कमाकर प्राप्त किया जाये और वह स्वच्छता से बनाया जाये तो उसे सभी वर्ण के लोग खा सकते हैं। आजकल होटलों में दलित, मुस्लिम व ईसाई सभी मत व जातियों के लोग पाकशाला में काम करते हैं और हमारे पुराने अन्धविश्वासी पौराणिक बन्धु व उनके परिवार के लोग बिना ‘न नुच’ के उस भोजन को ग्रहण करते हैं। यह महर्षि दयानन्द की विचारधारा का परिणाम है जिसे उन्होंने आज से एक सौ 140 वर्ष पहले प्रचलित कर दिया था। सरकारी कार्यालयों में हमारे दलित व अन्य मतों के बन्धु ऊंचे पदों पर कार्यरत हैं और हमारे परम्परावादी अन्धविश्वासी परिवारों के पण्डित कहलाने वाले बन्धु इनके अधीन कार्य करते हैं, यह गुण, कर्म व स्वभाव के कारण है जिसका शुभारम्भ व समर्थन महर्षि दयानन्द के द्वारा करने से इसका श्रेय उन्हीं को देना उचित होगा। हम यह भी अनुमान करते हैं कि मध्य काल में पण्डितों ने यदि स्त्रियों व शूद्रों को शिक्षा व अध्ययन से वंचित न किया होता तो अतीत में हमें कितनी अधिक संख्या में विद्वान व विदुषी श्रेष्ठ स्त्री-पुरूष मिले होते। हम यह अनुभव करते हैं कि आज भी जन्मना वर्णव्यवस्था जिसका आधुनिक रूप जन्मना जातिवाद है, समाप्त तो नहीं हुई है परन्तु यह अधिकांशतः अव्यवहारिक हो गई है। आज स्कूलों के प्रमाण पत्र के आधार पर बड़े सरकारी पद मिलते हैं जिसमें ब्राह्मणों सहित क्षत्रिय, वैश्य, पिछड़े व दलित सभी वर्गों के लोग होते हैं। इन प्रमाण पत्रों के आधार पर ही इन्हें सरकारी नौकरियां मिलती हैं तथा यह अपनी शिक्षा व पद से ही पहचाने जाते हैं, अर्थात सरकारी अधिकारी, डाक्टर, अभियन्ता, शिक्षक, नर्स आदि। एक प्रकार से आज मनुष्य की जो योग्यता है और वह जो कार्य करता है, वही उसकी पहचान व वर्ण बन गया है। इसमें गति इसलिए मन्द है कि आज दलित वर्ग के लोग सरकारी लाभ उठाने के लिए इस जन्मना जाति व्यवस्था अर्थात् मरण व्यवस्था को जारी रखना चाहते हैं। इससे भेदभाव दूर करने में कठिनाई हो रही है। वर्तमान सामाजिक स्थिति भले ही उन्नत वैदिक काल के अनुरूप न हो परन्तु मध्यकाल से तो कहीं अधिक श्रेयस्कर व उत्तम है। हम अनुभव करते हैं कि कुछ पीढि़यों के बाद वर्तमान समाज में जाति, वर्ण व सम्प्रदाय आदि के नाम पर जो विषमतायें हैं, वह सर्वथा दूर हो जायेगीं। यदि ऐसा भी हो जाता है तो इससे समाज भली भांति संचालित हो सकता है। इसे वर्तमान व्यवस्था को आजकल के समय व युग के अनुरूप वर्ण व्यवस्था कह सकते हैं जिसमें जाति सूचक शब्दों का प्रयोग बन्द होना आवश्यक है। ऐसा होने पर स्थिति और अधिक अनुकूल हो जायेगी और सामाजिक भेदभाव दूर होंगे। समस्या अब केवल एक ही शेष रहती है कि वैदिक काल में ब्राह्मण वर्ण का मुख्य कार्य वेदों की रक्षा, वेदों का अध्ययन, वेदों का शिक्षण व प्रचार, ईश्वरोपासना व यज्ञ आदि का प्रचार व प्रसार करना था वह आजकल बन्द हो गया है। इसकी समाज व देश को अत्यन्त आवश्यकता है। इसके लिए आर्य समाज व इसके गुरूकुलों की महत्वपूर्ण भूमिका है। इसके साथ हि हम यह भी अनुभव करते हैं कि आर्य समाज के संगठन को समयानुकूल बनाने की आवश्यकता है जिसके विद्वानों को प्रयास करना चाहिये।

वैदिक वर्ण व्यवस्था सृष्टि के आरम्भ से लेकर महाभारत काल से कुछ पूर्व तक सर्वोत्कृष्ट सामाजिक व्यवस्था के रूप में प्रचलित थी। इसका विकृत रूप महाभारतोत्तर व मध्यकालीन जन्मना जाति व्यवस्था थी। इस जन्मना व्यवस्था का वर्तमान आधुनिक रूप पूर्व वर्णव्यवस्था व जन्मना जाति व्यवस्था का मिला-जुला रूप है। वर्तमान सामाजिक व्यवस्था को हम वैदिक वर्ण व्यवस्था से श्रेष्ठ तो नहीं मानते परन्तु यह जन्मना जाति व्यवस्था से कहीं अधिक अच्छी है। आर्य हिन्दू धर्म के सभी विद्वानों और समाजशास्त्रियों को इस पर ध्यान देना चाहिये। आधुनिक सामाजिक व्यवस्था ऐसी होनी चाहिये जिसमें कि पूज्यों की ही पूजा हो अपूज्यों की नहीं। समाज में भेदभाव, पक्षपात, अन्याय तथा छुआछूत का किसी भी रूप में व्यवहार नहीं होना चाहिये। इस लक्ष्य की प्राप्ति में आर्यसमाज की बहुत बड़ी भूमिका है। इस पर निरन्तर चिन्तन मनन होता रहना चाहिये। इसी के साथ लेख को विराम देते हैं।

**-मनमोहन कुमार आर्य**

**पताः 196 चुक्खूवाला-2**

**देहरादून-248001**

**फोनः09412985121**